150 (क)लेख राईट टू रिकाल, एक सार्थक बहस
(ख)राइट टू रिकाल की समीक्षा

(क)राईट टू रिकाल, एक सार्थक बहस

राईट टू रिकाल के मुद्दे पर लम्बे समय से बहस चल रही है । सर्वोदय तो इसके पक्ष में स्वतंत्रता के तत्काल बाद से ही रहा है। जय प्रकाश आदोलन का मुख्य मुद्दा तो यही था जिसे राजनेताओं ने बाद में भुला दिया। ठाकुर दास जी बंग तथा लोक स्वराज मंच के दो सूत्री संविधान संशोधन अभियान में एक सूत्र यही है। गोविन्दा चार्य जी के व्यवस्था परिवर्तन अभियान में भी यह सूत्र शामिल है। वर्तमान लोक सभा अध्यक्ष सोमनाथ चटर्जी द्वारा इस मुद्दे को उठा देने से यह मांग और मजबूत हो गई है। पहले तो भारत के राजनेता इस मांग की अनदेखी करके इसे चर्चा से दूर रखते रहे किन्तु सत्रह अक्टूबर दो हजार सात को आचार्य पंकज जी के नेतृत्व में रैली निकली और जंतर–मंतर पर धरना –प्रदर्शन हुआ तब मांग के पक्ष–विपक्ष में चर्चा जोर पकड़ने लगी। इस मांग के विरोध में विधिवेत्ता ए0जी0 नूरानी का एक बड़ा लेख विभिन्न अखबारों में भी छपा है। अन्य चर्चाओं को मिलाकर भी कोई गंभीर तर्क सामने नहीं आ सका है किन्तु कुछ छोटे–मोटे व्यावहारिक प्रश्न उठते रहे हैं। कुछ वर्ष पूर्व पीलीभीत की एक सभा में एक निर्वाचित जन प्रतिनिधि ने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि जनप्रतिनिधियों पर ऐसी तलवार लटका देने से वे अनिश्चित होकर जल्दी–जल्दी घर भरने लग जाएंगे। नूरानी जी ने भी ऐसी स्थिति में सांसदों के निष्क्रिय होने का खतरा बताया है। ऐसे तर्क देकर तो राजनेताओं ने अपनी जात बता दी है। क्या संसद सदस्यता कमाने के ही उद्धेश्य से है? क्या राजनैतिक सक्रियता सिर्फ पद मात्र के लिए है? पद और धन

राजनीति का लक्ष्य घोषित करना तो पूरी तरह निन्दनीय विचार है, क्योंकि पद और धन तो राजनीति के सहायक उपकरण समझे जाने चाहिए, भले ही वर्तमान दूषित राजनीति में इन दोनों का बाहुल्य हो, किन्तु इसे सिद्धांत कैसे बताया जा सकता है, क्योंकि राजनेताओं में बढ़ती पद और धन लोलूपता पर नियंत्रण के लिए ही तो राइट टू रिकाल को समाधान के रूप में सोचा जा रहा हैं।

नूरानी जी ने लिखा है कि सांसद को बीच में हटाना उसके साथ अन्याय हो सकता है। प्रश्न उठता है कि अन्याय करने वाला कौन है? किसके साथ हुआ? और अन्याय क्या हुआ? राइट टू रिकाल में अन्याय करने वाला मतदाता समूह है जिसने उस सांसद को चुना है, अन्याय उस प्रतिनिधि के साथ हो रहा है जो वहां संसद में समाज का प्रतिनिधित्व कर रहा है। कोई भारत का राजदूत विदेश में भारत का प्रतिनिधित्व करे और कहे कि उस पर अंकुश लगाना या वापस बुलाना उसके साथ अन्याय है। यह तर्क प्रमाणित करता है कि उक्त व्यक्ति में प्रतिनिधित्व से ऊपर होने का अहंकार पैदा हो गया है और यदि ऐसी भावना महसूस हो तो भले ही अभी स्थिति बहुत खराब न हो किन्तु नियंत्रण आवश्यक है। राजनीति के मामले में तो पानी सर के ऊपर तक बहने लगा है। तीसरी बात यह है कि इसमें अन्याय क्या हुआ? हमने आपको प्रतिनिधि बनाते समय ही बता दिया कि हम आपको वापस बुलाने का अधिकार इन नियमों के अन्तर्गत सुरक्षित रखते है । आप इन नियमों के अन्तर्गत ही सांसद चुने गये। यदि हम आपको नियमानुसार वापस बुला लें तो इसमें अन्याय क्या हुआ ? हम वर्तमान नियमों के अन्तर्गत चुने गये सांसदों को वापस बुलाने की मांग न करके कानूनों में बदलाव की बात कर रहे हैं जिससे यदि वर्तमान सांसद यदि बहुत नीचे ही उतर जावें तो नये चुनाव के बाद लागू करने का तर्क दे सकते हैं।

राइट टू रिकाल दो के बीच के अधिकारों के बीच का मुद्दा है। 1. जन 2. जन प्रतिनिधि। लोकतंत्र में जन को लोक और शासन

व्यवस्था को तंत्र कहते हैं। जन प्रतिनिधि को लोक और तंत्र के बीच लोक का प्रतिनिधि माना जाता है। यदि लोक का प्रतिनिधि अपना धर्म छोड़कर तंत्र के साथ जुड़ जावे तो लोक को नियंत्रण का कोई अधिकार हो या नहीं। यदि प्रतिनिधि ही संविधान बना ले, संविधान संशोधन का भी अधिकार ले ले और मनमानी करने के लिए संविधान की दुहाई देना शुरू कर दे तो उसके व्यवहार की अन्तिम कसौटी संविधान को ही माना जाए क्या? नूरानी जी ने प्रतिनिधि निर्मित संशोधित संविधान और उसके अन्तर्गत बनी प्रशासनिक व्यवस्था पर तो विचार किया किन्तु जन या लोक को बाहर छोड़ दिया। राइट टू रिकाल न संविधान का प्रश्न है न प्रशासन का ,यह जन और जन प्रतिनिधि के बीच का मुद्दा है जिसमें से जन को छोड़कर प्रतिनिधि की चर्चा तक सीमित करना उचित नहीं।

एक प्रश्न इस व्यवस्था की संवैधानिक जटिलता के साथ भी जुड़ा है। जन प्रतिनिधियों ने यह अधिकार अपने पास सुरक्षित रखा है और वे इस अधिकार का दुरूपयोग करेंगे यह संभव है । मैं इस परिस्थिति से वाकिफ हूँ। क्या यह उचित होगा कि हम जन प्रतिनिधियों की इस ब्लैकमेलिंग को स्वीकार कर लें । भलें ही भारत को स्वतंत्र होने में कई सौ वर्ष लगे हो किन्तु हमने मुक्ति को असंभव मानकर गुलामी को स्वीकार नहीं कर लिया। कुछ लोगों ने विदेशी सत्ता में लाभ के लालच में समझौते भी किये और स्वराज्य प्रेमियों का मनोबल भी तोड़ा, किन्तु गुलामी नहीं गई। अब संवैधानिक राजनीति में जन प्रतिनिधियों के पक्ष में तर्क प्रस्तुत करके मनोबल तोड़ना समाज के साथ धोखा है। परिवर्तन के मार्ग क्या होंगे यह भिन्न विषय है। पहले यह तो तय हो कि लोकतंत्र में लोक को अपने जनप्रतिनिधि पर अंकुश का अबाध अधिकार होना चाहिए जिसमें लाभ–हानि नियम कानून संविधान संशोधन आदि का सारा अधिकार जन को हो जन प्रतिनिधि को नहीं।

एक अंतिम तर्क यह भी दिया जाता है कि इसका क्या तरीका हो। पूरे मतदाताओं के हस्ताक्षर संभव नहीं और मतदाताओं का एक वर्ग नियुक्त करने से वह वर्ग प्रतिनिधित्व करने वाले को अस्थिर या ब्लैकमेल कर सकता है। प्रश्न उठता है कि ब्लैक मेल का खतरा है। यदि वास्तव में ऐसा खतरा है, जिससे मैं भी सहमत हूँ तो ऐसा खतरा एक व्यक्ति को अधिकार सम्पन्न बनने में अधिक है या एक ग्रुप के? ग्रुप चाहे दो का ही क्यों न हो किन्तु एक से दो और दो से तीन में ब्लैकमेल का खतरा कम होना ही लोकतंत्र है। अभी चुनाव आयोग में भी ऐसा प्रयोग हुआ है। यदि जनप्रतिनिधि के वापस बुलाने में एक संख्या तक चुने हुए लोगों की व्यवस्था हो तो एक से तो अच्छा ही होगा। नूरानी जी का यह तर्क तो पूरी लोकतांत्रिक व्यवस्था के ही विपरीत दिखता हैं।

अन्त में मेरा निवेदन है कि हम इस विचार मंथन को इसी तरह आगे बढ़ावे और नूरानी जी सरीखे प्रबुद्ध विचारकों को भी इस विचार मंथन में मदद करनी चाहिए जैसा उन्होंने लेख लिखकर किया भी हैं।

प्रश्न – जनसत्ता 6 फरवरी में प्रसिद्ध पत्रकार प्रभाष जोशी का लेख चिन्तन योग्य भी है और चिन्ता का आधार भी। उन्होंने पूरे देश में साठ वर्ष बाद भी विभाजन के लिए गांधी को दोषी बताने वालों की संख्या लगातार बढ़ते जाने की बात कहीं है। प्रभाष जी के अनुसार वीर सावरकर का इतिहास हत्यारे का रहा है। जिसने कई अंग्रेजों की हत्याएँ कराई और गांधी हत्या में भी उनकी भूमिका वैसी ही रहीं है जैसी पूर्व में साथियों से अपराध कराकर स्वयं बच निकलने की रही। प्रभाष जी का मानना है कि सावरकर जैसे अपराधी को समाज की स्वीकृति और गांधी जैसे व्यक्तित्व पर आरोप लगाने की प्रवृत्ति लगातार बढ़ रहीं है जो खतरनाक है।

मैं आपसे जानना चाहता हूँ कि साठ वर्षो बाद के भारत में ऐसी स्थिति क्यों है? इसमें समाज दोषी है या समाज धीरे –धीरे यथार्थ

को समझने लगा है। आपने गांधी और गोडसे पर भी बेबाक टिप्पणी की है और गांधी तथा अम्बेडकर पर भी । अब आप गांधी और सावरकर पर भी कुछ हमारा मार्गदर्शन करने की कृपा करें।

उत्तर – प्रभाष जी ने सावरकर का इतिहास और गांधी के विषय में समाज में बढ़ रही भ्रान्ति का यथार्थ लिखा किन्तु विवेचना में कुछ अन्तर हो सकता है। सावरकर जी ने जिन अंग्रेजों की हत्याएं करवाई उन सबमें उनका मार्ग गलत था किन्तु न नीयत खराब थी न लक्ष्य। लक्ष्य तो गांधी का भी वहीं था जो सावरकर का। सावरकर पर अंग्रेजों की सहायता करने के भी आरोप लगते रहे हैं जो उनकी अपना काम निकालने की चालाकी भी हो सकती है। किसी मजबूरी में यदि उन्होंने चालाकी की हो तो उनकी नीयत पर आरोप लगाना उचित नहीं। ऐसे अतिवादी आरोप तो गांधी पर भी लगाए जाते रहे हैं कि उन्होंने क्रांतिकारियों की प्राणरक्षा के प्रयत्न नहीं किये। मैं स्वतंत्रता के पूर्व के संघर्ष को आधार बनाकर न सावरकर की आलोचना कर सकता हूँ न गांधी की जब तक कि किसी की नीयत पर संदेह न हो। सच्चाई यह है कि मैं विवेचना करते समय संघ विरोध या संघ समर्थन की पहचान स्थापित होने से भी बचता हूँ और सर्वोदय समर्थन या सर्वोदय विरोध की पहचान से भी। यद्यपि गांधी के संबंध में लिखते समय लोग मुझे सर्वोदयी मानने की भूल कर बैठते हैं और इस्लाम की विवेचना करते समय संघ समर्थक। जबकि मैं न ऐसा हूं न ही ऐसा लेबल लगवाने की कोई इच्छा है।

मैंने गांधी को अधिक समझने का प्रयास किया है जबकि सावरकर के विषय में कम जानकारी है। मेरे विचार में गांधी की नीयत भी ठीक रही है और नीतियां भी। सावरकर की नीयत ठीक रही है किन्तु नीतियों पर मेरा मतभेद है। मैं सावरकर की नीतियों को गलत नहीं कह सकता क्योंकि गांधी और सुभाष की नीतियां बिल्कुल भिन्न थी। मैं गांधी की नीतियों का अब तक पक्षधर हूँ। इसका अर्थ यह नहीं कि मैं सुभाष की नीतियों का विरोधी हूँ। सच्चाई यह है कि मैं सुभाष जी

की नीतियों के मामले में तटस्थ हूँ। मेरे विचार में गांधी जी और सुभाष बाबू भी अपनी–अपनी नीतियों पर तो चलते थे किन्तु एक दूसरे की नीतियों की आलोचना से बचते थे क्योंकि आपस में नीतियों की समीक्षा तो हो सकती है किन्तु आलोचना या विरोध स्वतंत्रता के प्रयत्नों को नुकसान कर सकता था। यदि गांधी और सुभाष एक साथ मिलकर काम करते तो अधिक लाभदायक था किन्तु यदि ऐसा नहीं हो सका तब भी दोनों एक दूसरे की आलोचना से बचते रहे यह भी गलत नहीं था और यदि आलोचना में लग जाते या विरोध करते तो स्वतंत्रता बाधित होती।

स्वतंत्रता के बाद सावरकर ने इस सीमा को तोड़ दिया और गांधी विरोध में सक्रिय हो गये जो गलत था। सावरकर ने स्वतंत्रता के बाद अपना लक्ष्य बदलकर राजनीतिक कर लिया जिसके लिए साम्प्रदायिक टकराव की स्थितियॉ पैदा करनी आवश्यक प्रतीत हुई और गांधी उसमें बड़े बाधक थे। कांग्रेस और हिन्दू महासभा राजनैतिक प्रतिद्वंदी बने। समाज बोझल हुआ। कांग्रेस ने संवैधानिक तरीके से गांधी को धोखा देकर गांधी को किनारे करने की योजना बनाई और हिन्दू महासभा ने गांधी का प्रत्यक्ष विरोध किया। दोनों ही अपनी अपनी योजना में सफल रहे। गांधी भी किनारे हो गये और गांधी की योजना भी बंद हो गई। कांग्रेस गांधी वारिस बन बैठी और हिन्दू महासभा राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के रूप में गांधी का विरोध करने लगी।

इन दोनों की नीतियों की व्याख्या तो तब की जाए जब नीयत ठीक हो। गांधी जी का लक्ष्य था समाज और सहायक थे धर्म तथा राज्य। कांग्रेस और संघ परिवार का लक्ष्य है राज्य और सहायक है धर्म और समाज। इस लक्ष्य प्राप्ति के लिए दोनों अपनी नीतियॉ बनाते हैं, एक दूसरे की आलोचना भी करते हैं और विरोध भी और बीच में गांधी के नाम का पक्ष– विपक्ष में उपयोग करते हैं। कांग्रेस ने गांधीवादियों को अपनी सहायक शाखा मान लिया और संघ परिवार ने भाजपा को। दोनों ने सत्ता और विपक्ष की भूमिका में ऐसा खेल खेलना शुरू कर

दिया कि गांधी और सावरकर शब्द न चाहते हुए भी शतरंज के खेल में मोहरे के रूप में उपयोग किये जाने लगे। आज भारत में इतनी बड़ी और विध्वंसक समस्याएं मौजूद हैं, किन्तु हम और आप उलझते और समझते है। इतिहास की बीती घटनाओं मात्र को। ये घटनाएँ योजना बनाते समय मार्गदर्शन तो कर सकती है किन्तु इससे अधिक कुछ पाने का प्रयत्न अभी उचित नहीं ।

आपका प्रश्न है कि आज गांधी के प्रशंसकों की संख्या घटकर सावरकर के प्रशंसकों की बढ़ रही है इसका क्या कारण है? इस पर गहराई से विचार करिए। स्वतंत्रता के बाद सावरकर के पक्ष वालों ने इस्लाम विरोध को राजनीतिक हथियार बनाया और गांधी के समर्थकों ने इस्लाम समर्थन को। अच्छे–अच्छे गांधीवादी भी सब काम छोड़कर अमेरिका विरोध और इस्लाम समर्थन को ही अपना एकमात्र कार्यक्रम घोषित कर दिये हैं। भारत की नई पीढ़ी को महसूस होता है कि गांधी भी ऐसे ही इस्लाम समर्थक रहे होंगे और यदि गांधी ऐसे ही इस्लाम समर्थक नकली धर्म निरपेक्ष थे तो सावरकर की सोच ठीक थी । लोगों को कोई यह बताने वाला नहीं है कि गांधी ने गुलामी और इस्लाम के बीच इस्लाम से अल्पकालिक समझौता करना अपनी रणनीति समझा था न कि सिद्धान्त। आज के गांधीवादी पता नहीं किसी रणनीति के अन्तर्गत यह कर रहे हैं या भूलवश यह तो वे ही बता सकते हैं। आपने लेख को आधार बनाकर सावरकर की हत्यारी प्रवृत्ति की आलोचना की है और सावरकर के प्रशंसकों को कटघरे में खड़ा किया है। मैं जानना चाहता हूँ कि सावरकर पर गांधी हत्या का आरोप था और न्यायालय ने बरी कर दिया। प्रोफेसर गीलानी पर संसद पर हमला करने का आरोप था और न्यायालय ने बरी कर दिया। गीलानी जी को गांधीवादी सम्मानित करते हैं और सावरकर को संघ परिवार के लोग। आप बताइये कि यदि सावरकर अंग्रेजों के हत्यारे हैं तो गिलानी जी ने कौन सा सम्मान का काम किया है। यदि वे संसद पर हमले के झूठे आरोप से बच भी गये तो उन्होंने कौन सा सामाजिक प्रतिष्ठा का काम कर दिखाया? अफजल गुरू और गीलानी

की प्रशंसा करने वाले यदि सावरकर की आलोचना करें तो हम तटस्थ लोग क्या करें। प्रश्न यह नहीं है कि मोदी और संघ के विषय में समाज की धारणा गलत दिशा में क्यों है? प्रश्न यह है कि हम धर्म निरपेक्ष लोगों की समाज में विश्वसनीयता क्यों घट रही है और उसमें हम कहॉ गलत है? मुझे लगता है कि ज्यों–ज्यों धर्म निरपेक्षों के बार–बार बोले जाने वाले असत्य की पोल खुल रही है त्यों–त्यों गांधी की धर्म निरपेक्षता पर प्रश्न उठाने वालों की संख्या बढ़ रहीं है। मुझे डर है कि कहीं राम की भी वहीं दुर्दशा न हो जब संघ परिवार की नकली राम भक्ति या हिन्दूत्व प्रेम की पोल खुलने लगे और राम या हिन्दू उससे प्रभावित होने लगे।

(ख)राइट टू रिकाल की समीक्षा

पन्द्रह जनवरी दो हजार आठ के दैनिक भाष्कर में प्रसिद्ध अधिवक्ता और कानूनविद् ए0जी0 पूरानी का राइट टू रिकाल को अव्यावहारिक बताते हुए एक विस्तृत लेख छपा है। लेख की प्रतियॉ मेरे पास सुनील एक्का जी ने भी भेजी है और अंबिकापुर से आनन्द गुप्त जी ने भी। कई फोन भी प्राप्त हुए हैं। अंबिकापुर के आनन्द गुप्त जी ने अपने विचार भी भेजें है ।

अव्यावहारिक होगा राइट टू रिकाल

मतदाताओं को अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों को वापस बुलाने का अधिकार (राइट टू रिकाल) दिए जाने के लोक सभा स्पीकर सोमनाथ चटर्जी के सुझाव पर देश के लोगों द्वारा समुचित ध्यान नहीं दिया जाना आश्चर्यजनक है। एक बेहद सम्मानित राजनेता और विधिवेत्ता के इस सुझाव की सावधानी पूर्वक जांच–परख की ही जानी चाहिए। चटर्जी कई मंचों से अपने सुझाव को दोहरा चुके हैं। उनका मानना है कि निर्वाचित जन–प्रतिनिधियों को मतदाताओं के प्रति ज्यादा जवाब देह बनाने के लिए ऐसा किया जाना जरूरी है।

चटर्जी का कहना है कि मतदाताओं को उस स्थिति में अपने सांसदों को वापस बुलाने का अधिकार होना चाहिए जब वे अक्षम हो, असंवेदनशील हों, भ्रष्ट हों, सांसद के नाते अपने कर्तव्यों का निर्वाह करने के प्रति गंभीर नहीं हो अथवा सदन के भीतर या बाहर उनकी गतिविधियां सांसद की मार्यादा के अनुरूप नहीं हो। सांसद को वापस बुलाने के लिए यह कारण बहुत व्यापक हैं। निर्वाचित प्रतिनिधियों को वापस बुलाने की प्रक्रिया के बारे में चटर्जी का कहना है कि मतदाता अपने प्रतिनिधि का कार्यकाल पूरा होने के पहले एक विशेष अधिकारी को याचिका देकर ऐसा कर सकते हैं। लोकसभा स्पीकर मतदाताओं को अधिकार दिये जाने का एक और फायदा गिनाते हैं कि इससे मतदाताओं को अपने प्रतिनिधि के काम पर निगरानी रखने के लिए बढ़ावा मिलेगा। पूर्व सांसद एरा सेझियन का कहना है कि प्रतिनिधियों को वापस बुलाने का अधिकार राष्ट्रपति प्रणाली वाले देशों में खास तौर पर कारगर रहता है क्योंकि वहीं विधायिका और कार्यपालिका के कामकाज पूरी तरह अलग होते हैं। राष्ट्रमंडल के देशों में से ब्रिटिश कोलंबिया, कनाडा, उगांडा और गुयाना में मतदाताओं को यह अधिकार हासिल है। इन देशों के अनुभवों का विस्तृत अध्ययन करके यह देखा जाना चाहिए कि वहां के मतदाताओं और जन प्रतिनिधियों के अनुभव कैसे रहे हैं। राइट टू रिकाल के विरोधी दलील देते हैं है कि मतदाताओं को यह अधिकार दिए जाने पर सांसद इस पसोपेश में पड़ सकते हैं कि या तो वे कुछ भी काम करें या फिर यथा संभव कम से कम काम करें ताकि उन्हें लेकर कोई विवाद न खड़ा हो। इसके अलावा रिकाल की व्यवस्था का दुरूपयोग सरकार को अस्थिर करने के लिए भी किया जा सकता है। इससे निर्वाचित सरकार का ताना–बाना ढीला पड़ सकता है और सांसद दूरदृष्टि से काम करने की बजाय मतदाताओं को स्वीकार्य कामों को ही प्राथमिकता दे सकते हैं । किसी सांसद को उसके कथित खराब व्यवहार के कारण वापस बुलाना अन्यायपूर्ण हो सकता है क्योंकि उसे वापस बुलाने वाले मतदाताओं पर अपने आरोप साबित करने की जवाबदेही नहीं होगी।

राइट टू रिकाल पर तीन पहलुओं से विचार किया जाना चाहिए– संवैधानिक, प्रशासनिक और राजनीतिक। चूंकि यह सांसदों के साथ ही विधायकों पर भी लागू होगा, इसलिए इसका प्रावधान करने के लिए संविधान संशोधन करना होगा । यानी पहले तो संसद के दोनों सदनों में दो तिहाई बहुमत से तदाशय के संविधान संशोधन को मंजूरी देनी होगी और फिर राज्यों की विधान सभाओं को भी इसका अनुमोदन करना होगा। ऐसे में सवाल उठता है कि क्या हमारे सांसद या विधायक खुद ही अपना '' डेथ वारंट'' जारी करने को तैयार होंगे। हमारे संसदीय और विधानसभा क्षेत्र काफी लम्बे –चौड़े हैं। संबंधित अधिकारी को रिकाल की याचिका देने के लिए कुल मतदाताओं के 51 से लेकर 75 प्रतिशत तक की कोई भी सीमा क्यों न तय की जाए, उनके दस्तखत जुटाना बहुत मुश्किल होगा। फिर इस दस्तखतों की पुष्टि भी करनी होगी । यह काम किसी एन0जी0ओ0 के बूते का नहीं है। कोई सम्पन्न राजनीतिक दल इसका बेजा इस्तेमाल कर सकते हैं। रिकाल का अभियान विफल रहने पर भी संबंधित सांसद की छवि तो धूमिल होगी ही। देश में पहले से ही राजनीतिक वातावरण बेहद गरम है। इसे और गरमाने की कोई जरूरत नहीं है।

चटर्जी ने रिकाल के लिए मुख्यतया दो तरह के कारण बताए हैं। पहले कारण, सांसदों की संवेदनहीनता, अक्षमता या अपने काम के प्रति उपेक्षा से संबंधित है। ऐसे मामलों में सांसदों पर रिकाल का अधिकार देना समस्या को कम करने की बजाय और बढ़ाने का कारण भी बन सकता हैं। इसकी वजह से दो चुनावों के बीच में राजनीतिक गहमागहमी बढ़ सकती है।

दूसरा कारण सांसदों के कदाचरण या भ्रष्टाचार से जुड़ा है। इसका निदान रिकाल नहीं बल्कि कानून को संख्त बनाना है। सन् 1998 में सुप्रीम कोर्ट के 3–2 के बहुमत से दिए गए एक निर्णय के अनुसार किसी सांसद या विधायक को रिश्वत देने की पेशकश करने वाला तो

अपराधी माना जाता है मगर सांसद या विधायक पर आरोप नहीं लगाया जा सकता। यह फैसला बदले जाने की जरूरत है। इसके अलावा संसदीय निगरानी में भी कड़ाई बरती जानी चाहिए। लेकिन लोगों के जागरूक न होने या चरित्र में कमी की भरपाई किसी यांत्रिक व्यवस्था से नहीं की जा सकती। 1972–75 के लोकनायक जयप्रकाश नारायण के आंदोलन का यही आधार था। उन्होंने 1972 में अंग्रेजी साप्ताहिक एवरीमैन्स में लोकपाल, भ्रष्टाचार उन्मूलन, भिन्न राय रखने के अधिकार आदि पर कई लेख लिखे थे। उन्होंने एक लेख में लिखा था भारत में जिस तरीके से चुनावी चंदा इकट्ठा किया जाता है, जिस तरह से चुनावों में भारी–भरकम खर्च किया जाता है, जिस तरह से बूथों पर कब्जा किया जाता है और जिस तरीके से फर्जी मतदान होता है उस सबके मद्दे नजर चुनावों के महज औपचारिकता बनकर रह जाने का खतरा है।'' उन्होंने लिखा था कि बढ़ता राजनीतिक भ्रष्टाचार समग्र राष्ट्रीय जीवन को प्रभावित कर रहा है।

निजी और सरकारी कारोबार, प्रशासन, व्यवसाय, शिक्षा, परम्परा, लोक व्यवहार और निजी संबंध तक अछूते नहीं रहे हैं । जेपी ने सवाल उठाया था, नैतिक ताने–बाने के बगैर क्या कोई देश जिन्दा रह सकता है? इस सवाल का जवाब केवल राजनेताओं को नहीं देना है। इसका जवाब हम सबको हैं।'' उन्होंने इस बात पर गहरी चिन्ता जताई थी कि देश में चतुर्दिक नैतिक पतन हो रहा है और सार्वजनिक जीवन का कोई भी क्षेत्र इससे अछूता नहीं है। कम ज्यादा का अंतर भले ही है। उन्होंने अंत में समस्या की तह में जाते हुए सवाल किया था, क्या नैतिकता के बगैर लोकतंत्र चलता रह सकता है? यांत्रिक उपायों से समस्या हल नहीं हो सकती। जेपी द्वारा 35 साल पहले लिखी गई ये पंक्तियां मौजूद हालात में भी बखुबी लागू होती है। तब से हालात सुधरने की बजाय बिगड़े ही हैं।

उत्तर– सोमनाथ जी चटर्जी ने जो सुझाव दिया उसकी भाषा ही गलत है। सोमनाथ जी ने ऐसा शालीन भाषा का उपयोग किया है जैसे कि सांसदों से समाज भीख मांग रहा हो और नूरानी जी समाज द्वारा उस भीख के दुरूपयोग की समीक्षा कर रहे हों। सबसे पहले हम यह विचार करें कि मालिक कौन है और मैंनेजर कौन। दूसरा प्रश्न यह है कि समाज जो अधिकार संसद या सांसदों को देता है वे अधिकार उनके पास समाज की अमानत हैं या उनका पावर। स्वाभाविक रूप से तो समाज मालिक है और सासंद मैनेजर इसी तरह संसद या सांसदों के पास समाज द्वारा दिया गया अधिकार समाज की अमानत है उनका पावर नहीं। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हमारे देश के राजनेताओं ने एक संविधान बनाकर समाज को अक्षम घोषित कर दिया और स्वयं को संरक्षक। उन्होंने षड़यंत्र पूर्वक संविधान संशोधन का अधिकार भी अपने ही पास सुरक्षित कर लिया तभी तो पूरानी जी सरीखे कानूनविद् पूछते हैं कि संसद ऐसा करने को कैसे तैयार होगी, उन्होंने डेथ वारंट शब्द का उपयोग किया है। क्या हमारे देश की संसद अपने अधिकारों पर अंकुश को समाज द्वारा डेथ वारंट ही समझती रहेगी। और यदि समाज द्वारा ऐसे संविधान संशोधन की मांग उनके लिए डेथ वारंट ही बनी रहेगी तो क्या भारत की जनता द्वारा संवैधानिक तरीके से ऐसे डेथ वारंट पर हस्ताक्षर की उम्मीद छोड़कर असंवैधानिक या नक्सलवादी मार्ग पर चलने को मजबूर होना पड़गा। अब यह अन्तिम रूप से तय करने का समय आ गया कि देश की संसद स्वयं को मालिक समझती है या सरंक्षक या मैनेजर। यदि यह बात संवैधानिक तरीके से हल नहीं होगी तो देश में असंवैधानिक तरीकों का समर्थन बढ़ता ही जाएगा। इसलिए आवश्यकता यह है कि नूरानी जी सरीखे कानूनविद् तथा उनके पक्षकार रूपी सांसद समाज की इच्छा को संवैधानिक तरीके से पूरी करने में मदद करें। हम इन सबको यह भी बताना उचित समझते है कि वे सोमनाथ जी चटर्जी जैसे दूरदृष्टि वाले राजनेताओं के संकेतों को समझने का प्रयत्न करें।

नूरानी जी ने सांसदों को ऐसी स्थिति में निष्क्रिय होने की संभावना व्यक्त की है। पहली बात तो यह है कि यह संभावना ही गलत है। हमारे देश के मंत्रिमण्डल से किसी भी मंत्री को कभी भी प्रधानमंत्री हटा सकता है। ऐसे अधिकार का मंत्रिमण्डल पर निष्क्रियता का प्रभाव क्यों नहीं पड़ता। फिर यह अधिकार किसी व्यक्ति के पास केन्द्रित न करके मतदाताओं के पास विकेन्द्रित होने जा रहा है। इसमें निष्क्रियता की बात यदि मान भी लें और निष्क्रिय होने के कारण बीच में ही सांसद को बदल दिया गया तो समाज का क्या बिगड़ जाएगा? यदि हम इस संभावना पर विचार करें कि यदि उसके बाद भी आने वाला वैसा ही हुआ तब क्या होगा? तो मैं पूछना चाहता हूँ कि क्या नूरानी जी डाक्टर नियुक्त करते समय यह घोषित करने के लिए तैयार है कि इलाज पूरा होने तक वे डाक्टर नहीं बदलेंगे। ऐसी घोषणा क्या उचित होगी? यदि ऐसी घोषणा का प्रावधान ही जाए तो उससे जो लाभ होगा उससे अधिक हानि होगी, क्योंकि डाक्टर के क्रिया–कलापों की समीक्षा का अधिकार उसी डॉक्टर को नहीं दिया जा सकता।

एक सामान्य सा सिद्धांत है कि जब चरित्र में गिरावट होती है तथा भ्रष्टाचार में वृद्धि होती है तब अधिकारों का केन्द्रीयकरण घातक और विकेन्द्रीयकरण लाभदायक होता है। नूरानी जी बताएं कि यह सिद्धान्त गलत है या वर्तमान समय में चरित्र पतन और भ्रष्टाचार वैसा नहीं जैसा मैं कह रहा हूँ। यदि दोनों बाते सही है तो राजनीति पर अंकुश से घबराहट क्यों। यदि राजनेताओं पर वापसी की तलवार लटक जाए तो समाज को जो घाटा बताया जा रहा है उससे कई गुना अधिक लाभ निश्चित है। मैं चाहता हूँ कि वे एक समाजशास्त्री की नजर से आकलन करें तब उन्हें लगेगा कि साठ वर्षो से चली आ रही वर्तमान व्यवस्था ही चरित्र पतन और भ्रष्टाचार का आधार है।

मुझे यह तर्क भी अजीब लगा कि निर्वाचित प्रतिनिधि को वापस बुलाना अन्यायपूर्ण होगा। अन्याय किसके साथ होगा और क्या अन्याय

होगा यह स्पष्ट नहीं है। यह बात और स्पष्ट होगी तब पता चलेगा। राइट टू रिकाल पर तीन पहलुओं से विचार की आवश्यकता बताई गई 1. संवैधानिक 2. प्रशासनिक 3. राजनैतिक। मेरे विचार में ये तीनों तो राजनैतिक पहलू के ही भाग है। इसमें से प्रमुख पहलू है सामाजिक। उसे तो छोड़ ही दिया गया। संविधान ,प्रशासन और राजनीति समाज के लिए है। समाज को किनारे करके कोई भी समीक्षा करनी उचित नहीं। इसी तरह तर्क दिया गया कि सांसद को अस्थिर करना ठीक नहीं। मैं नहीं समझता की इस तर्क में लेखक क्या कहना चाहता है?

एक प्रश्न उठाया गया है कि रिकाल की प्रक्रिया पर। आधे मतदाता कैसे हस्ताक्षर करेंगे? हम आधे मतदाताओं के हस्ताक्षर की बात नहीं कह रहे। हम कह रहे हैं रिकाल के लिए किसी व्यावहारिक प्रक्रिया पर। वह प्रक्रिया क्या हो यह विचार शुरू करें। इस संबंध में रामानुजगंज शहर में प्रयोग किया गया है। अन्य प्रयोग भी संभव है। उस क्षेत्र में आने वाले ब्लाक चेयरमेन के आवदेन को पर्याप्त मानकर सभी पंच या सरपंच वोट करें या एक रिकाल परिषद् बनाई जाए जो ऐसा निवेदन कर सकती है। यदि आप इस मांग को उलझाने के लिए प्रक्रिया की जटिलता को बहाना बनावें तो ठीक नहीं । कुछ लोग तो ऐसा भी तर्क देते हैं कि रिकाल का अधिकार जिनको होगा वे सांसद को ब्लैकमेल भी कर सकते हैं। ऐसा तर्क देने वालों से पूछिये कि एक सांसद ब्लैकमेल नहीं कर सकता है क्या? यदि ब्लैकमेल कम करना है तो एक सांसद पर एक से अधिक लोगों का अंकुश हो। एक सांसद को सारी स्वतंत्रता दे दे और बाकी सब की नीयत पर संदेह करें यह ठीक नहीं।

अन्त में मैं कहना चाहता हूँ कि इस मुद्दे पर स्वस्थ बहस होनी चाहिए। मैं सोमनाथ जी चटर्जी का धन्यवाद करता हूँ कि उन्होंने इस मांग को समर्थन दिया साथ ही मैं सोमनाथ जी से निवेदन करता हूँ कि वे इस मुद्दे को भीख के रूप में न मांगकर समाज के अधिकार

के साथ उठावेंगे तो समाज का मनोबल मजबूत होगा। मेरी इतनी ही मॉग है कि सोमनाथ जी तंत्र और लोक के बीच लोक को मालिक और तंत्र मैंनेजर की भाषा में प्रस्तुत करें तो और अच्छा होगा।